डॉक्टरजी का जीवन-सन्देश

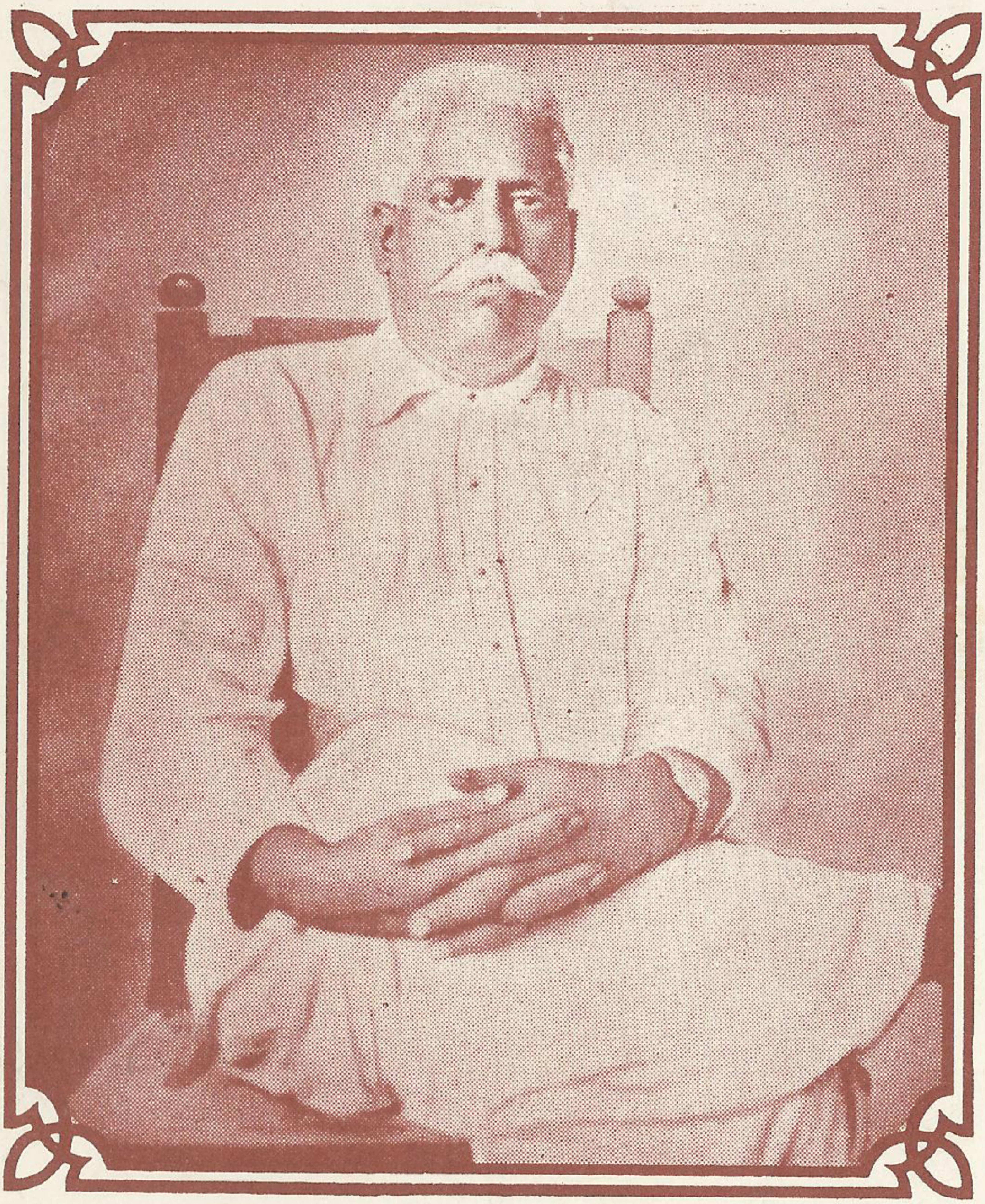

दत्तोपंत ठेंगडी

|| ॐ ||

डॉक्टरजी का जीवन सन्देश

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक, विरोधक, समर्थक, तटस्थ निरीक्षक इन सभी का संघ के विषय में अलग अलग अभिप्राय हैं - कुछ अनूकूल है तो कुछ प्रतिकूल - किन्तु एक विषय में सभी का एकमत है। और वह याने मनुष्यों का स्थायी, मजबूत, शास्त्रशुद्ध संगठन करने की जो पद्धति संघ ने विकसित की है, ऐसी पद्धति दुनिया में कोई भी विकसित नहीं कर सका। पश्चिम में कुछ लोगों के नाम फैशन बतौर कुछ दिनों तक चमके, जो बाद में ओझल हो गये । किन्तु इस तरह का संगठन खड़ा करने की पद्धति दुनिया में कहीं भी दिखाई नहीं दी। यह सर्वोत्कृष्ट पद्धति है। व्यक्तिगत मानसशास्त्र और सामूहिक मानसशास्त्र - इन दोनों का गहन अध्ययन करते हुए जिसका विकास हुआ है, ऐसी यह सर्वोत्कृष्ट कार्य पद्धति है। इस विषय में सभी का एकमत है। यहां तक कि जो संघ के विरोधक हैं, उनको भी जब यह अनुभव आता है कि केवल 'मास मीडिया' के आधार पर संघ को खतम् नहीं किया जा सकता - तब वे भी संघ को खतम् करने के लिये संघ की ही पद्धति से शाखा आदि लगाने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार संघ की कार्य पद्धति के विषय में सभी का एकमत है।

संघ की इस कार्यपद्धति का केन्द्र बिन्दु है, दिन-प्रतिदिन चलने वाली शाखा । इस नित्य कार्यक्रम के साथ ही कुछ नैमित्तिक कार्यक्रम, यथा राष्ट्रीय स्तर के वर्ष भर आने वाले छह उत्सव, जो नियमित रूप से आते हैं तथा अनियमित रूप से होने वाले संघ शिक्षावर्ग, वार्षिकोत्सव, शिबिर, बैठके आदि - इन सभी कार्यक्रमों का एक ही उद्देश्य है, और वह याने हरएक हिन्दू के हृदय पर समाज

समर्पण का संस्कार अंकित करना - हरएक हिन्दू को सुसंस्कारित करना। सुसंस्कारित हिन्दू याने स्वयंसेवक और ऐसे सुसंस्कारित स्वयंसेवकों का अनुशासनबद्ध संगठन खड़ा करना। और, इस संगठन की सीमाएं बढ़ाते-बढ़ाते इतनी बढ़ाना कि संघ स्थान की सीमाएं और हिन्दुस्तान की सीमाएं एक हो जांये । यही इस कार्य पद्धति का उद्देश्य है।

नैमित्तिक कार्यक्रमों में भी संघ ने जिन छह उत्सवों का समावेश किया है, उनमें भी हिन्दू मन पर कुछ विशेष संस्कार अंकित करने का उद्देश्य निहित है। डॉक्टरजी जो संस्कार विशेष रूप से अंकित करना चाहते थे उस दृष्टि से विचार किया तो दिखाई देता है कि संघ के इन छह उत्सवों में तीन उत्सव ऐसे हैं जो विजय के उत्सव हैं। साधन सम्पन्न आसुरी शक्ति पर, साधन विहीन दैवी शक्ति ने मात की है - ऐसे तीन उत्सव हैं। प्राग्ऐतिहासिक कालीन रामचन्द्रजी का विजयादशमी; इतिहासकालीन शालिवाहन का वर्ष प्रतिपदा और निकटस्थ इतिहासकालीन छत्रपति शिवाजी महाराज का हिन्दू साम्राज्य दिन महोत्सव - तो, छह में से तीन उत्सव इस तरह से विजय का विश्वास निर्माण करने वाले हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि डॉक्टरजी को सबसे अधिक महत्त्व इस बात का लगा होगा कि अपने हिन्दू समाज में आत्मग्लानि, आत्मविस्मृति और एक तरह से हीनता का जो भाव है, वह दूर होना चाहिये। इसीलिये इस प्रकार की योजना उन्होंने की होगी, यह स्पष्ट है।

आज का वर्ष प्रतिपदा महोत्सव भी उसी श्रृंखला में एक है - शालिवाहन की विजय का प्रतीक। जिस शालिवाहन के बारे में यह लोककथा (सांकेतिक होगी इसलिये लोककथा) है कि लड़ाई करते करते जब हाथी-घोड़े-सिपाही मर गये तो उन्होंने मिट्टी के हाथी-घोडे-सिपाही बनाये - उनकी नाकों में श्वास फूंककर, उनमें प्राणों का संचार कर उन्हें जीवित किया और ऐसे सिपाहियों-हाथी-घोडों के द्वारा लड़ाई जीत ली! - ऐसा जिनके बारे में कहा जाता है उन शालिवाहन की विजय का यह दिन वर्ष प्रतिपदा है।

हम जानते है कि यह प. पू. डॉक्टरजी का जन्म दिन भी है। किन्तु डॉक्टरजी की इच्छा और पद्धति के अनुसार हम डाक्टरजी का जन्म दिन नहीं मनाते। क्योंकि, डॉक्टरजी का कहना था कि हमें व्यक्ति पूजा नहीं चाहिये, व्यक्ति निष्ठा नहीं चाहिये ।

यहां तक कि गुरू के स्थान पर भी कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि परम्वंदनीय भगवत्ध्वज को ही उन्होंने हमारे समक्ष रखा। स्वयं अपने बारे में भी वे कहते थे कि मुझे भी आप गुरू के नाते स्वीकार मत कीजिये। यदि किसी को कभी ऐसा दिखाई दे कि मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा निर्धारित ध्येय-पथ से भ्रष्ट हो रहा हूं, तो मेरा भी लिहाज न करते हुए, मुझे भी ठोकर मारकर संघ के ध्येय-पथ पर आप आगे बढिये। स्वयं के बारे में भी डॉक्टरजी के उक्त कथन के कारण अपने यहां व्यक्ति-पूजा का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। फिर भी आज की परिस्थिति में हम सब लोगों के लिये डॉक्टरजी का स्मरण करना आवश्यक हो जाता है। उनके लिये नहीं, जन्म दिन मनाने के लिये भी नहीं; किन्तु जब कभी बाह्य परिस्थिति के कारण संभ्रम की अवस्था आती है तो जैसे समुद्र में दीपस्तम्भ की आवश्यकता होती है, वैसे ही दीपस्तम्भ के समान डॉक्टरजी का जीवन और स्थान है। परिस्थिति के कारण इस समय अपने लिये मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु डॉक्टरजी का पुनःस्मरण करना आवश्यक लगता है। परिस्थिति कैसी है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं है। अन्यमंचों से उसका विस्तृत और जोरदार वर्णन किया जाता है, इसलिये यहां उसका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु ऐसी परिस्थिति में अच्छे अच्छे लोगों का मन भी भ्रमित होने लगता है - तब दीपस्तम्भ के समान व्यक्ति का स्मरण करो ऐसा कहना पड़ता है। इसीलिये तो समर्थ स्वामी रामदास ने संभाजी महाराज को जो पत्र लिखा उसमें अन्त में कहा - ''शिवरायाचे आठवावे रूप, शिवरायाचा आठवावा प्रताप - शिवरायाचा आठवावा साक्षेप भूमंडळी - शिवरायाचे कैसे बोलणे - शिवरायाचे कैसे चालणे - शिवरायाचे सलगी देणे कैसे असे - यह सारा स्मरण करो।'' अतः संभ्रमित अवस्था में इस प्रकार का स्मरण आवश्यक हो जाता है। परिस्थिति के कारण उसी अवस्था में, आज हममें से अनेक लोग होने के कारण डॉक्टरजी का पुनः स्मरण करना आज प्रयोजनीय हो जाता है।

जीवन कार्य और कार्य शैली :

डॉक्टरजी का स्मरण करते समय कुछ कठिनाइयां भी हैं। डॉक्टरजी का जीवन कार्य और कार्यशैली को हिमशैल (ice-berg) की उपमा दी जा सकती है। हिमशैल के बारे में हमने सुना है कि समुद्र में जल के ऊपर हिमशैल का एक

अष्टमांश हिस्सा रहता है; बाकी सात अष्टमांश हिस्सा समुद्र के भीतर रहता है, जो बाहर से दिखाई नहीं देता। डॉक्टरजी का जीवन कार्य और कार्यपद्धति इसी शैली की थी। इसके भी कुछ कारण थे। एक तो उनकी मूलतया आत्म-विलोपी प्रवृत्ति; फिर दुसरा बहुत वर्षों तक बंगाल में और बाहर क्रांति कार्य में रहने के कारण गुप्तता का संस्कार - गुप्तता का अनुशासन और तीसरा यह कि विविध समकालीन कार्यों में प्रत्यक्ष हिस्सा लेने के बाद, विविध देशी-विदेशी विचार धाराओं का सम्यक् परिचय कर लेने के बाद और वर्षों तक गहन चिन्तन करने के बाद उन्होंने जो 'बायफोकल विजन (Bifocal vision) विकसित किया था - तात्कालिक लक्ष्य हिन्दूराष्ट्र का स्वातंत्र्य और अंतिम लक्ष्य हिन्दु राष्ट्र का परम वैभव - दोनों की दृष्टि से जो प्रचलित सभी लोगों के द्वारा स्वीकृत कार्य पद्धति है, वह उपयुक्त नहीं है, घातक है। रघुवंश के राजाओं के बारे में जो कहा गया था - 'फलानुमेयाः प्रारंभ' - यही उनकी कार्य पद्धति थी। आज तो पांच-दस लोग पार्टी स्थापन करते हैं, तुरन्त घोषणा-पत्र (Menifesto) प्रकाशित करते हैं कि हम देश की सूरत शकल, संसार की सूरत-शकल, ब्रम्हाण्ड की सूरत-शकल कैसी बदलने वाले हैं ? जबकि रघुवंश के राजाओं के बारे में कहा जाता है - 'फलानुमेयाः प्रारंभ' - अर्थात् वे बड़े बड़े काम शुरू करते थे किन्तु उसकी प्रसिद्धि (publicity) नहीं होती थी। जब उस कार्य को फल प्राप्त होता था तो यह जो अलग अलग कार्य पद्धतियाँ है - एक तो पांच लोगों की यह पार्टी जो कार्य शुरू करने के पहले ही - देश की ब्रह्माण्ड की सूरतशकल कैसे बदलनी है इसका घोषणा-पत्र प्रकाशित कर कार्यारंभ करती है - प्रसिद्धि का सहारा लेने वाली आज की पद्धति और फल आने के पश्चात् ही लोगों को पता चले कि इस कार्य का बीजारोपण कभी न कभी हुआ था - यह दूसरी पद्धति। डॉक्टरजी ने इस दूसरी कार्यशैली का, अपने तात्कालिक और अंतिम, दोनों लक्ष्यों का विचार करते हुए स्वीकार किया और इसके कारण आज हम जो समझते हैं कि संघ कार्य में नये नये आयाम जुड़ गये हैं, ऐसा नहीं है। गहन चिन्तन के परिणाम-स्वरूप, दूरगामी, मूलगामी और सर्वगामी चिन्तन के परिणाम स्वरूप विजयादशमी को १९२५ में संघ की स्थापना करने से पूर्व ही एक दूरगामी दृष्टि (Long range vision) प.पू. डॉक्टरजी में विकसित हुई थी। प्रकट नहीं हुई थी। जैसे जैसे शक्ति बढ़ती गई वैसे वैसे क्रमशः

प्रकट होती गई। आज संघ कार्य के जो विविध आयाम हम समझते हैं, वे कोई अलग अलग नयी editions नहीं हैं तो डॉक्टरजी के मन में मूलतया जो संकल्पना थी उसी का 'प्रोग्रेसिव्ह अनफोल्डमेंट' अर्थात् उत्तरोत्तर, अधिकाधिक होनेवाला प्रस्फुटीकरण है। नयी बात नहीं है। इस प्रकार डॉक्टरजी की आत्मविलोपी प्रवृत्ति, क्रांतिकारियों का गुप्तता का संस्कार, गुप्तता का अनुशासन और 'फलानुमेयाः प्रारंभ' की कार्यशैली - इन तीनों के कारण जैसा मैंने कहा कि हिमशैल की भांति एक अष्टमांश ऊपर है और सात अष्टमांश नीचे - पूर्ण कल्पना करना बड़ा कठिन है।

फिर भी हम लोगों के लिये एक आनंद की बात है कि नागपुर में, जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की गंगोत्री है, और डॉक्टरजी की जन्मभूमि है, प्रारंभिक काल में कर्मभूमि भी रही है, जो आगे चलकर सम्पूर्ण भारत ही उनकी कर्मभूमि बन गई, अतः बचपन से ही यहां उनके स्मपर्क और लोगों से घनिष्टता बढ़ती गई। अलग अलग क्षेत्रों में, अलग अलग लोगों से, संघ की स्थापना के पूर्व और संघ स्थापना के पश्चात भी सम्पर्क का उनका दायरा अधिकाधिक विस्तृत होता गया। उस समय प. पू. डॉक्टरजी को जिन्होंने देखा, उनके साथ काम किया, उनके नेतृत्व में काम किया, ऐसे किनते ही लोग नागपुर में थे और आज भी है। यह हमारे लिये संतोष की बात है। यह स्वाभाविक है, कि निसर्ग के नियमानुसार कालक्रम से कुछ लोग बिछुड़ जाते हैं। ऐसे लोगों में जिन्होंने डॉक्टरजी के साथ काम किया, ऐसे भी कुछ लोग हैं, जो अब नहीं रहे। अभी अभी आप जानते हैं कि अपने बाबूरावजी वाघ की मृत्यु हो गई। डॉक्टरजी के समय से सक्रिय कार्यकर्ता रहे, बाबूराव चौथाईवाले भी हमें छोड़ गये। ऐसे कई लोग हैं, जो हमें छोड़ गये हैं। किन्तु अभी भी नागपुर में उस पीढी के लोग हैं जैसे मान. बापूराव वऱ्हाडपांडे, श्री मनोहरराव ओक, परशुरामपंत बढिये, श्यामरावजी गाडगे और श्री त्र्यंबकरावजी शिलेदार। आप जानते ही हैं कि आजकल मान. बापूरावजी ने वृद्धावस्था में भी कष्ट करते हुए, संघ का कुछ मौलिक साहित्य निर्माण करने का उपक्रम शुरू किया है। मान. बाबूरावजी वैद्य भी इस कार्य में उन्हें सहयोग दे रहे हैं।

ऐसे, उस पीढी के कुछ लोग आज भी हमारे बीच में हैं। इस कारण ऐसे

लोगों की उपस्थिति में, और नागपुर में प. पू. डॉक्टरजी के बारे में बोलने का मुझे अधिकार नहीं है, यह मैं महसूस कर रहा हूं। चूंकि उमर बढ़ने के कारण आप लोगों को लगता है कि मैं 'सीनियर' हूं तो संघ की दृष्टि से मैं 'जुनियर' ही हूं। इस दृष्टि से मेरी जो कमी है, वह कमी भी मेरे मन में इस समय अखर रही है। अतः मैं सोचता हूं कि मेरे जैसा एक 'जुनियर' व्यक्ति डॉक्टरजी के बारे में क्या कहे ? तो अभी तक जो सुना है और पढ़ा है - श्रुति और स्मृति के आधार पर डॉक्टरजी के जीवन और कार्यशैली को समझने का प्रयास करने का हम प्रयास करेंगे। इस दृष्टि से कुछ बातें मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ। डॉक्टर जी के जीवन में अलग अलग पहलुओं पर अलग अलग बातें पढकर बतायीं, तो भी उसमें सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी, ऐसा मुझे विश्वास है।

उनके चरित्रकार नाना पालकर कहते हैं कि गैरिक वस्त्र न पहनकर भी वे संन्यासी थे। वे ब्रह्मचारी थे, पर उन्होंने इस विषय में भी लोगों के सामने ऐसा रूप नहीं रखा मानों वे कोई अलौकिक बात कर रहे हों। उन्होंने प्रारंभसे ही तथा विचारपूर्वक यही कार्यपद्धति स्वीकार की थी कि समाज में रहते हुए सामान्य व्यक्तियों के समान व्यवहार कर उनके जीवन के साथ समरस होकर उसमें परिवर्तन किया जाये। .... वे स्वयं सादा जीवन व्यतीत करते थे तथा अन्यों को भी यही बताते थे कि "विलास के साधन उपलब्ध हैं, इसीलिये उनका उपयोग करना, ठीक नहीं है। सीधी-सादी वस्तुओं का व्यवहार सदैव उत्तम है तथा उसी में आनंद भी आता है।" .... "कोई सुविधा अनायास प्राप्त हो रही है, तो उसका उपयोग करने में आपत्ति क्या है, ऐसा विचार करना ठीक नहीं है।"

... उनके स्वभाव में अत्यंत दक्षता एवं नियम निष्ठा होने के कारण कार्यालय तथा आय-व्यय की वे बहुत अच्छी व्यवस्था रखते थे। डॉक्टरजी ने दि. ५ फरवरी १९३० को इस सम्बन्ध में जो टिप्पणि लिखी है, वह उनकी आय-व्यय के विषय में धारणा पर अच्छा प्रकाश डालती है। वे लिखते हैं कि "संघ की स्थापना से जनवरी १९३० तक और तबसे आज तक का सब हिसाब इस प्रकार जाँच कर ठीक-ठीक तैयारं करना है कि कोई भी आलोचक उसमें दोष न निकाल सके। कारण इसके आगे इस व्यवस्थितता की अत्यन्त आवश्यकता है।"

डॉक्टरजी संघचालक से सरसंघचालक हो गये। बहुत विचार मंथन उनके मन में चला तो १९३३ के सितम्बर माह में उनकी डायरी में, खुद के विषय में जो टिप्पणि है, वह इस प्रकार है। डायरी में वे लिखते हैं -

(१) इस संघ का जन्मदाता अथवा स्थापन कर्ता मैं न होकर आप सब हैं, इसका मुझे पूरी तरह ज्ञान है।

(२) आपके द्वारा उत्पन्न संघ का, आपकी इच्छा एवं आज्ञा से मैं धात्री का काम कर रहा हूं।

(३) इसके आगे भी आपकी इच्छा और आज्ञा होगी तब तक यह काम मैं करता रहूंगा तथा यह काम करते हुए कितने भी संकट आये और मानापमान सहन करने की बारी आयी तो भी मैं अपना पांव पीछे नहीं हटाऊंगा।

(४) परन्तु मेरे इस काम के लिये अयोग्य होने के कारण मुझसे संघ का नुकसान होता है, ऐसा यदि आपको लगे तो दूसरा योग्य मनुष्य इस स्थान के लिये ढूँढ निकालिये।

(५) आपकी आज्ञा से जितने आनंद के साथ मैंने यह पद स्वीकार किया है, उतने ही आनंद से आपके द्वारा नियोजित व्यक्ति के हाथ में सब अधिकार सूत्र देकर उसी क्षण से उसके आज्ञापालक स्वयंसेवक के नाते चलूंगा।

(६) कारण मेरे लिये अपने व्यक्तित्व का मूल्य नहीं, संघकार्य का मूल्य और संघ के हित के लिये कोई भी बात करने में मुझे किसी भी प्रकार का अपमान कभी प्रतीत नहीं होगा।

(७) संघचालक की आज्ञा का किसी भी परिस्थिति में स्वयंसेवक के द्वारा बिना ननुनच किये पालन होना आवश्यक है। तथा, 'नाक से भारी नथ' यह स्थिति संघ में कभी न उत्पन्न होने देने में ही संघ कार्य का रहस्य है।

(८) अतः स्वतः वह आज्ञा पालन कर दूसरे स्वयंसेवक से उसका पालन करवाना, यह प्रत्येक स्वयंसेवक का कर्तव्य है।''

कर्तव्य मानकर भरत के समान सब कार्य की धुरी वहन करने की मन की

सिद्धता और उसके साथ नेतृत्व के रत्नजड़ित सिंहासन को अपना न मानकर, उस पर हिन्दू-राष्ट्रपुरुष की पादुकाएं स्थापित करने का वैराग्य और सेवाभाव डॉक्टरजी के रूप में मूर्तिमंत हुआ था।

डॉक्टरजी ने लेखनी का बहुत कम उपयोग किया। इस सम्बन्ध में कभी कभी वे कहते थे कि "सफेद को काला न करते हुए मेरी इच्छा तो हिन्दुओं का अभेद्य एवं अजेय संगठन निर्माण करने की है।"

पूना के अधिकारी शिक्षण-वर्ग के लिये डॉक्टरजी १९३६ की अप्रैल के दूसरे सप्ताह में नागपुर से चले। इसके पूर्व उन्होंने श्री कृष्णराव वडेकर को धुले-जलगांव विभाग में संघ कार्य हेतु भेजा। उस समय उन्हे दिनांक २४ मार्च को 'संघ स्थापना विधि' शीर्षक के अन्तर्गत एक महत्त्वपूर्ण सूचनात्मक परिपत्र लिखकर दिया। पत्रक छोटा होने पर भी स्वयंसेवक के विषय में उनकी कल्पना और अपेक्षा पर अच्छा प्रकाश डालता है। डॉक्टरजी इस परिपत्रक में लिखते हैं -- "…. शिवाजी का प्रत्येक अधिकारी जैसे रणकुशल था वैसे ही संघ का प्रत्येक अधिकारी संघ की सम्पूर्ण शिक्षा का तज्ञ होना चाहिये। हिन्दू हित से अविरोधी किसी भी सार्वजनिक कार्य में, चालक की अनुज्ञा प्राप्त होने पर, कोई भी स्वयंसेवक अपनी जिम्मेदारी पर भाग ले सकता है। राष्ट्रीय वृत्ति से स्वदेशी व्रत का पालन करना चाहिये। आचारशून्यता तथा कर्मकाण्ड दोनों के अतिरेक को छोड़कर सामुदायकि बल-सम्पादन का स्वर्ण-मध्य संघ के कार्यक्रमों से सिद्ध करना चाहिये। क्षण-मात्र के लिये उत्साह-वर्धक तथा तात्कालिक वीरता प्रकट करने वाले कार्यक्रम से संघ अलिप्त रहे, क्योंकि उनसे संघटन की मजबूती को धक्का लग सकता है।"

जॉयंट कन्सलटेशन के बारे में उस समय के संघ के कार्यवाह श्री रघुनाथराव बाण्डे के द्वारा एक पुस्तिका में लिखी गयी टिप्पणियाँ डॉक्टरजी के उन दिनों के प्रयत्नों पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। उनसे यह पता चलता है कि दिनांक २१ जून १९२६ को नागपुर के अनाथ विद्यार्थी गृह में एक बैठक हुई थी। उस बैठक में प्रत्येक स्वयंसेवक को बताया गया कि वह एक कागज पर अपना ध्येय, संघ का ध्येय तथा वह संघ का चालक हो गया तो संघ की कार्यपद्धति और रचना कैसी रखेगा, इस सब के बारे में अपने विचार लिखे। यह भी निश्चित हुआ कि वह कागज

डॉक्टरजी के पास दि.२८ जून तक पहुंचा देना चाहिये। स्पष्ट है, कि दूसरों को विचार के लिये प्रवृत्त करने की यह डॉक्टरजी की योजना थी। केवल डॉक्टरजी बोलते रहें तथा तरुण स्वयंसेवक चुपचाप सुनकर 'जो बताया वह करने वाले तथा जो दिया वह खानेवाले' दास की प्रवृत्ति से उनके अनुयायी कहलाकर व्यवहार करें, यह बात डॉक्टरजी को पसंद नहीं थी। डॉक्टरजी का दृढ विश्वास था कि यदि स्वयंसेवकों के विचार को प्रेरणा दी तो वे विशुद्ध हिन्दू समाज की ओर तथा उस सत्संकल्प की पूर्ति के लिये अपना जीवन समर्पण करने की ओर स्वयं खिंचते चले जायेंगे।

पब्लिसिटी (प्रसिद्धि) को आजकल बहुत महत्त्व दिया जाता है। उसके विषय में ज्यादा कुछ नहीं बोलूंगा। किन्तु इस सम्बन्ध में कवि रविन्द्रनाथ ठाकुर का एक वाक्य डॉक्टरजी बोला करते थे। कवि रविन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतवासियों की इस प्रवृत्ति के विषय में एक पत्र में कहा था कि - "प्रत्यक्ष में कुछ सफलता प्राप्त करने तक हम अज्ञात रहें, यह मेरा कथन है।..... उस समय तक हम पीछे रहकर केवल अपना काम करते रहें। किन्तु अपने देशबन्धुओं की प्रवृत्ति बिलकुल उलटी ही दिखती है। वे अपनी अत्यावश्यक और साधारण-साधारण सी बातों की पूर्ति जो कि परदे के पीछे रहकर ही हो सकती है, की ओर कोई ध्यान नहीं देते । उनका सारा ध्यान बाहर के दिखाउ एवं घृणित प्रदर्शनों पर केन्द्रित हो गया है।" डॉक्टरजी की इस विषय में क्या नीति रही है, यह हम जानते हैं। हमारे बच्छराजजी ने उनके बारे में वर्णन करते हुए कहा था - डॉक्टरजी का जीवन लोकप्रसिद्धी-पराङ्मुख जीवन था। इसके बारे में एक-दो उदाहरण दिये जा सकते हैं। १९३७ में जब महाराष्ट्र में संघ के विरोधियों ने अपनी लेखनी से जब जी-भरस कीचड़ उछाली तब डॉक्टरजी ने श्री. का. भा. लिमये को यही बताया कि ".... आपके यहां के समाचार पत्रों में संघ के विरुद्ध उठा हुआ तूफान हम सबके लिये विनोद का विषय बन गया है। हमारे मन पर इन बातों का कोई परिणाम नहीं होता। आप इस विषय में निःशंक रहें। किन्तु आप इस बात की चिन्ता अवश्य करें कि इस प्रकार के अपप्रचार से आपके यहां के कार्य को किसी प्रकार का धक्का न लगने पाये। इस प्रकार की बातों से अपने कार्य की निश्चित वृद्धि होगी, इसमें कतयी शंका नही है।"

संघ की विचारधारा पर आधारित एक मराठी साप्ताहिक प्रकाशित करने का विचार उन दिनों पूना में चल रहा था। पत्र के प्रकाशन की अनुमति देते हुए डॉक्टरजी ने लिखा था - "....इसमें कतयी शंका नहीं कि इस पत्र के द्वारा सदैव अपनी ही विचारसरणी का प्रतिपादन होगा। किन्तु संघ पर विभिन्न लोगों द्वारा किये जानेवाले आरोप तथा उनके उत्तर-प्रत्युत्तर के झगड़े में आप बिलकुल न पड़ें। आजकल आपके यहां के पत्रों में संघ पर अनेक प्रकार के झूठे आरोप पढ़ने को मिलते हैं । ये आरोप चाहे समाचार पत्रों में हों या सार्वजनिक सभाओं में, हमें उनका उत्तर न देते हुए, उनकी ओर पूर्णतः दुर्लक्ष्य करना चाहिये।"

दिल्ली में नागपुर से कार्य करने के लिये किसी को भेजा हुआ था। उनको बाद में पत्र लिखते हुए डॉक्टरजी कहते हैं - "आप दिल्ली पहुंचे है और वहां राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य करने वाले हैं, यह समाचार किसी की भी भूल से क्यों न हो, समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ। यह बात संघ की दृष्टि से अत्यंत अनिष्ट हुई है। इस प्रकार प्रसिद्ध होने से, कार्य करते समय प्रारंभ में ही अनेक प्रकार की बाधाएं उपस्थित होती हैं। इसीलिये हमें कार्य आरंभ करते समय प्रसिद्धि नहीं चाहिये। लोगों के सामने अपना कार्य दृश्य स्वरूप में आने के पश्चात् उसकी अनायास ही प्रसिद्धि होती है और वह संगठन के लिये लाभदायक सिद्ध होती है । उधर के लोगों को इस बात को समझा दें और फिर से ऐसी गलती न हो पाये, इसकी चिन्ता करें।"

फॅकल्टी फार डीटेल्स'

डॉक्टरजी की Faculty for details भी विलक्षण थी। उन्होंने अपने सामने बहुत विशाल ध्येय - 'परमवैभवं नेतुमेतत स्वराष्ट्रं - रखा था। सार्वजनिक जीवन में बहुत लोगों का स्वभाव ऐसा होता है कि विशाल ध्येय, विशाल कार्य मन में होने के कारण - बड़ी बड़ी बातें बड़े-बड़े उत्सव-समारोह, बड़े आन्दोलन, बड़े प्रचार आदि की ओर तो उनका पूरा ध्यान रहता है, किन्तु संगठन के नाते जो छोटी छोटी बातें ध्यान में रखने योग्य होती हैं, वे उनकी आंखों से ओझल हो जाती हैं। हवा में छलांग लगाने की उनकी प्रवृत्ति होती है। प. पू. डॉक्टरजी में Faculty for

details कितनी थी, छोटी छोटी बातों की ओर भी उनका ध्यान रहता था, इसके दो-तीन उदाहरण देखिये -

एक प्रचारक को लिखे अपने पत्र में डॉक्टरजी लिखते हैं - ''संघ विषयक कागज पत्र भूल से कभी कभी आप की जेब में ही रह जाते हैं। ध्यानपूर्वक इन कागज पत्रों का स्मरण रखें। .... आपकी या मेरी असावधानी से यदि वे खो जाते हैं तो कार्य की बहुत हानि होगी।''

संगठन के विषय में भी डॉक्टरजी कितने सतर्क रहा करते थे, इस सम्बन्ध में उनके विचार उनके एक पत्र से स्पष्ट होते हैं। कार्यकर्ताओं में परस्पर मनोमालिन्य कभी कभी हो जाते है। ऐसी नाजुक परिस्थिति से निपटना याने रेशम के धागों की गुत्थी को सुलझाने जैसा है। ऐसी ही एक परिस्थिति में डॉक्टरजी लिखते हैं :-

''आज मैं आपको एक महत्त्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में लिख रहा हूं। परंतु इसके बारे में हम दोनों के अतिरिक्त अन्य किसी को बिलकुल पता न चले। आपके और श्री.... के आपसी सम्बन्ध जैसे रहने चाहिये थे, वैसे नहीं रह सके, यह बात अब बिलकुल स्पष्ट हो चुकी है। संघ का यह अबाध तत्व है कि संघ के संगठन में कोई भी व्यक्ति इस प्रकार एक दूसरे से दूरी पर नहीं रह सकते। इस सम्बन्ध में श्री.... से मेरी विस्तृत बातचीत होने के पश्चात मेरा विचार निश्चित हुआ है कि गलती पूर्णतया उनकी ही थी। अर्थात् इस भूल का सुधार भी उनके द्वारा ही हो; यही सर्वथा योग्य एवं उचित है और इस तत्व को व्यवहार में परिणत कर उसे सत्य स्वरूप में सिद्ध कर दिखाना प्रत्येक स्वयंसेवक का कर्तव्य है। इस कर्तव्य का अनुसरण करते हुए श्री.... गत सब घटनाओं के लिये आपसे हृदयपूर्वक क्षमा-याचना कर आपसी दूरी के भाव पूर्णतः नष्ट करे और आप भी भूतकाल की बातों के बारे में उदार अन्तःकरण से उनको क्षमा करें और विगत सब बातों को भूलकर इसके पश्चात् एक दिल से कार्य करने में अग्रसर हों। परंतु हम दोनों एवं श्री .... हम तीनों के अतिरिक्त यह बात अन्य किसी को ज्ञात न हो पाये।''

''आप दोनों में पूर्ण सौहार्द प्रस्थापित हुआ है और गत बातों को आप भूल

चुके हैं, इतना ही केवल संघस्थान पर घोषित कर सभी को काम में जुट जाने की आवश्यकता है।"

सार्वजनिक सभाओं के माध्यम से संघ की विचार धारा का प्रचार करने हेतु अकोला के श्री बाबासाहेब चितळे ने आमसभाओं का आयोजन करने का सोचा । इन सभाओं में भाषण करने के लिये अभ्यासु युवकों की योजना करने से पूर्व डॉक्टरजी की अनुमति प्राप्त करने के लिये उन्होंने पत्र लिखा। इस पत्र के उत्तर में डॉक्टरजी ने लिखा था -

"आपका पत्र प्राप्त हुआ। सम्बन्धित सब लोगों के साथ हुए विचार विनिमय का निष्कर्ष इस प्रकार है...."

"जिनके भाषण करवाने की योजना आपने बनाई है, वे सब नवयुवक हैं। उन्हे सार्वजनिक क्षेत्र में भाषण करने की रूचि एवं आदत अभी से लगाना उचित नहीं है। वैसा होने से उनकी चित्तवृत्ति में, हमारे लिये अवांछनीय परिवर्तन होने की संभावना है। इसलिये इस काम में प्रौढ, अनुभवी एवं मंजे हुए लोगों का ही उपयोग, कार्य की दृष्टि से इष्ट एवं फलदायी है।...."

Details की दृष्टि से सांगली के श्री काशीनाथराव लिमये को लिखे डॉक्टरजी के एक पत्र का उल्लेख करना भी मैं आवश्यक समझता हूं। डॉक्टरजी का वह पत्र इस प्रकार है - ".... आपका पत्र हमें दि. १७.१.३३ को प्राप्त हुआ (आपके पत्र पर दिनांक लिखा हुआ नहीं है।) इस पत्र से हमारा दि. ११-१२-३२ को लिखा गया पत्र आपको मिला या नहीं, कहना संभव नहीं है। वैसे ही आपका पत्र पढ़कर ऐसा लगता है कि आपके द्वारा भेजा गया कम से कम एक पत्र ऐसा है, जो हमें प्राप्त न हो सका। इस विषय में स्पष्टीकरण करने की कृपा करें। आपके द्वारा भेजे गये पत्रों के दिनांक हम यहां उद्धृत कर रहे हैं। आपसे हमें दि. ७.९.३२, दि. ७.१०.३२, दि. २३.१०.३२ और दि. ६.१.३२ के इस प्रकार चार पत्र और अभी प्राप्त हुआ पाँचवा पत्र, कुल मिलाकर पांच पत्र मिले हैं। इनके अतिरिक्त यदि आपने अधिक पत्र भेजे हैं तो कृपया उनके दिनांक सूचित करें।"

"नागपुर से आपको दि. १२.९.३२, दि. १.१०.३२, दि.१०.११.३२ और

दि.१०.१२.३२ को चार पत्र हमने भेजे हैं और यह पांचवा पत्र आज भेज रहे हैं । .... इनमें से यदि एकाध पत्र आपको नहीं मिला हो या आपके द्वारा भेजे गये उपर्युक्त पत्रों के अतिरिक्त यदि आपने और पत्र लिखे हों तो कृपया सूचित करें। इस पत्र को हम रजिस्टर कर भेज रहे हैं। हमारे द्वारा भेजे गये सभी पत्र आपको यथासमय प्राप्त होते रहे हैं, इस विषय में आपसे ज्ञात होते ही पत्र को रजिस्टर कर भेजने की आवश्यकता नहीं रहेगी। अतः इस पत्र का उत्तर यथाशीघ्र त्वरित भेजने की कृपा करें।...''

आंदोलन और संघ :

बहुत बार ऐसे मामले (issues) आते हैं जिनका सम्बन्ध राष्ट्रजीवन से होता है और जिन्हे लेकर आंदोलन किये जाते हैं। ऐसे आंदोलन और उसमें हिस्सा लेने के बारे में अपनी भूमिका क्या रहे, इस पर डॉक्टरजी के इस पत्र से प्रकाश पड़ता है और स्पष्ट दिशा मिलती है। यह पत्र बिलासपुर के किसी कार्यकर्ता को लिखा गया था। पत्र में डॉक्टरजी कहते हैं - ''.... बिलासपुर की परिस्थिति देखकर मुझे कुछ चिंता हुई। परन्तु उसमें सुधार की आशा आपके द्वारा भेजे गये पत्र में प्रकट होने से संतोष हुआ। चिंता होने से ही यह पत्र भेज रहा हूं। प्रस्तुत आंदोलन से संघ कार्य को किसी भी प्रकार हानि न हो, इससे कोई यह अर्थ न निकाले कि संघ इस आंदोलन का विरोधी है। परंतु संघकार्य भी राष्ट्रीय कार्य है, इसलिये उसे चलाना प्रत्येक स्वयंसेवक का कर्तव्य है। हम आपको पहले ही सूचित कर चुके हैं कि जो स्वयंसेवक इस आंदोलन में हिस्सा लेना चाहते हैं, वे व्यक्तिशः (संघ) चालक की अनुमति से ही सत्याग्रह में भाग लें। परंतु जो लोग कार्य के आधारस्तम्भ हैं, उन पर संघ चलाने का दायित्व है। संघ जानता है कि इस आंदोलन से मात्र राष्ट्र में जागृति होगी, स्वाधीनता प्राप्त नहीं होगी। जागृति हो, इसलिये इस आंदोलन के प्रति विरोध की नहीं अपितु सहकार्य की नीति संघ ने अपनायी है। संघ के अस्तित्व को ही ठेस पहुंचा कर हम सहयोग करें, ऐसा संघ नहीं चाहता। वैसा करना भी नहीं चाहिये। संघ पर भीरुता का किया जाने वाला आरोप व्यर्थ है। संघ का प्रत्येक स्वयंसेवक स्वाभिमानी है। वह किसी भी प्रकार अपमान नहीं सहेगा। इसी कारण आंदोलन से पूर्ण समरसता उचित नहीं है। इस विषय में किसी से वादविवाद निरर्थक

सिद्ध होगा। अपना कार्य उत्तम प्रकार से करते हुए अपने से जितनी बन सके उतनी सम्पूर्ण सहायता आंदोलन की अवश्य की जाए। सत्याग्रह आंदोलन की एकाध बाधा हमारे द्वारा ही यदि दूर हो सकती है तो अवश्य दूर करें। इस आंदोलन से होने वाली जागृति का उपयोग अपने संगठन की वृद्धि में हो। इस आंदोलन से जागृति हुई है। अपने आंदोलन से संगठन और संघ कार्य होने वाला है। अतः आगे चलकर हमें जो संगठन करना है, उसके लिये अभी से हमें प्रयत्नशील रहना चाहिये।''

भागानगर सत्याग्रह के समय महाराष्ट्र प्रांत संघचालक के पत्र का उत्तर देते हुए डॉक्टरजी ने एक वाक्य में इस सम्बन्ध की नीति व्यक्त की थी। वह यह थी कि ''सत्याग्रह में जो लोग भाग लेना चाहते हैं, वे व्यक्तिगत रूप से ले सकते हैं ।'' संघ के प्रारंभ से ही डॉक्टरजी ने प्रत्येक राजनीतिक आंदोलन के सम्बन्ध में यही सुसंगत नीति बरती थी कि संघ के स्वयंसेवक जैसे संघ के घटक है, वैसे ही वे हिन्दूसमाज के भी एक जागरूक एवं कर्तव्यशील नागरिक हैं। अतः उन्हें इस नाते ही राजनीतिक आन्दोलनों में व्यक्तिशः भाग लेना चाहिये। १९३०-३१ के जंगल-सत्याग्रह में सम्मिलित होने के पूर्व इसी नीति के अनुसार डॉक्टरजी ने सरसंघचालक का पदभार डॉ. ल. वा. परांजपे के सुपुर्द किया था, तथा अपने सहयोगियों से भी उसी नीति का पालन करवाया था। एक ओर राजनीतिक आंदोलनों का तात्कालिक, नैमित्तिक एवं संघर्षमय स्वरूप था तो दूसरी ओर संघ का नित्य, अखंड एवं रचनात्मक कार्य। दोनों की भिन्नता भलीभाँति ध्यान में लेकर आंदोलनों की सफलता के साथ-साथ संघ का चिरन्तन कार्य भी अबाध रूप से चलता रहे, इस उद्देश्य से ही डॉक्टरजी ने दूरदर्शिता एवं विचारपूर्वक इस नीति का निर्धारण किया था। तात्कालिक आदेश के कारण कुछ लोगों की अप्रसन्नता सहन करके भी डॉक्टरजी ने इस नीति का पूर्णतः पालन किया।

१९३८ के दिसम्बर में भागानगर-सत्याग्रह के कुछ संचालकों ने जो पत्र निकाले उसमें यह उल्लेख किया था कि ''संघ ने भागानगर आंदोलन में संघ के नाते ही भाग लिया है।'' यह बात असत्य और भ्रमोत्पादक थी। इन सज्जनों का प्रयत्न संघ को राजनीति में घसीटने का था। अतः डॉक्टरजी ने उनको एक पत्र लिखकर स्पष्ट किया कि ''रा. स्व. संघ के विषय में लोगों में गलत फहमी पैदा

करनेवाली वार्ता का आपके पत्रकों में आना आप के कार्य की दृष्टि से कभी भी हितावह नहीं है। अतः अपने प्रकाशन-विभाग को तुरन्त कड़ी सूचना दें कि इसके आगे रा. स्व. संघ का उल्लेख आप के पत्रकों में न किया जाए।''

जब कम्युनल अवार्ड आया :

बीच में थोड़ा क्रम ऐसा रहा कि कम्युनल अवार्ड आते तक राष्ट्रीय और राजनीतिक दोनों क्षेत्रों के विषय में कोई स्पष्ट विचार करने की आवश्यकता नहीं थी। ऐसा ही है कि राष्ट्रीय यह एक बड़ा सर्कल (वृत्त) है। उसमें से एक छोटा सर्कल राजनीति का है। हरेक राजनीतिक बात राष्ट्रीय नहीं होती और हरेक राष्ट्रीय बात राजनीतिक नहीं होती। किन्तु रॅमसे मेकडोनाल्ड ने गोलमेज परिषद के पश्चात् कम्युनल अवार्ड दिया - इसके आधार पर चुनाव हुए। वह हमारी राष्ट्रीयता को अखंडता को आव्हान था। इसके कारण यह राष्ट्रीय प्रश्न है। यह चुनाव केवल राजनीतिक प्रश्न नहीं है। कौनसी पार्टी सत्ता में आती है, कौनसी नहीं, इतना ही यह सीमित नहीं है। तो, देश को खंडित करनेवाली यह जो कम्युनल अवार्ड की योजना है, उसके बारे में जनता ने अपना मत प्रकट करना है। इसलिये यह राष्ट्रीय काम है, ऐसा समझकर व्यक्तिगत रूप से स्वाभाविकतया सभी स्वयंसेवकों ने कम्युनल अवार्ड के खिलाफ काम करने वाले क्रांग्रेस नेशनालिस्ट पार्टी और हिन्दु महासभा के उम्मीदवारों के लिये पूरी ताकत लगाकर काम किया। इससे हिन्दू महासभा के नेता बड़े प्रभावित हुए - उन्हें ऐसा लगा कि इतने अच्छे अनुशासित स्वयंसेवकों का संघ यदि हमारे 'व्हालंटियर कोर' के रूप में काम करे तो अच्छा रहेगा और इस कारण वे डॉक्टर जी पर तरह तरह से दबाव डालने लगे। डॉक्टरजी के साथ हिन्दू सभाई नेता डॉ. मुंजे के प्रारंभ से घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण इस दबाव को रोक पाना (Resist करना) बड़ा नाजुक काम था, फिर भी उन्होंने यह काम किया। तब हिन्दू महासभा नें एक तरकीब निकाली - 'रामसेना' नामक एक 'मिलीशिया' संस्था की स्थापना की और डॉक्टर हेडगेवारजी उसकी जिम्मेदारी संभालेंगे, ऐसी घोषणा भी कर दी ! उसका उत्तर देते हुए डॉक्टरजी ने लिखा, ''मेरी तबियत आजकल बिलकुल ठीक नहीं रहती इसलिये किसी भी महत्त्व के कार्य को अपने ऊपर नहीं ले सकता। अतः 'हिन्दु मिलीशिया' के सम्बन्ध में आप मेरा नाम

कहीं भी न डालें। नाम न होते हुए भी इस विषय में मुझसे जो सहायता संभव होगी, वह अवश्य करूंगा।''

राजनीति से अलिप्त

डॉक्टरजी द्वारा इतने स्पष्ट शब्दों में अपनी असमर्थता सूचित करने के उपरान्त भी डॉ. मुंजे का आग्रह बना ही रहा और दि. १२ अक्तूबर के पत्र में श्री शं. रा. दाते ने उन्हे इस निर्णय की सूचना भेज दी। तब डॉक्टरजी ने डॉ. मुंजे के प्रति आदर होते हुए भी अत्यन्त सौजन्यता के साथ उनके आग्रह को अमान्य कर दिया था। इस सन्दर्भ में डॉ. ल. वा. परांजपे ने 'केसरी' के दिनांक ५ जुलाई १९४० के अंक में लिखी हुई बात, ऐसे विषयों में डॉक्टरजी की क्या नीति थी, यह स्पष्ट करती है। डॉ. परांजपे मराठी में लिखते हैं - ''मागचे वर्षी सरदार गृहांत भरलेल्या हिन्दुमहासभेच्या वर्किंग कमिटीने 'नॅशनल मिलीशिया' काढण्याचे ठरविल्यावर मी डॉक्टर हेडगेवार यांच्याशी, डॉ. मुंजे यांचे सूचनेवरून बोललो. त्यांना मी या मिलीशियाला शिक्षण (Training) देण्याकरिता संघातील स्वयंसेवकांची मदत देण्याची विनंती केली असता त्यांनी मोठ्या आनंदाने ह्या कार्याकरितां काही शिकून तयार झालेल्या स्वयंसेवकांची मदत देण्याचे कबूल केले. लोकांची अपेक्षा अशी होती की, संघ या दृष्टीने म्हणजे संस्था या रूपानेच, हिन्दू सभेचे काम संघाने केले पाहिजे. आणि हिन्दू सभेचे कार्य व्यक्तिगत करण्यास डॉ. हेडगेवारांचा केव्हांही विरोध नव्हता. त्यांच्या संघाला निर्भेळ ठेवण्याच्या धोरणामुळेच पक्षोपक्षांपासून संघ अलिप्त राहून एवढा वाढू शकला. फार कशाला ? त्यांनी स्वतः कांग्रेसच्या राजकारणांत भाग घेतला व हिन्दूसभेचे सेक्रेटरी या नात्याने अनेक वर्षे काम केले आहे व ते त्याचे उपाध्यक्ष होतेच. संघातील स्वयंसेवकाने अधिकाधिक जितका वेळ मिळेल तितका संघाचे कार्य करण्यास घालवावा अशी त्यांची अपेक्षा होती व ती रास्त आहे. पण ज्यांना हिन्दुसभेचे काम करण्याची इच्छा व स्फूर्ति असेल त्यांना ते कार्य करण्याची व्यक्तिगत रीतिने त्यांची मनाई नव्हती.'' अर्थात् ''पिछले वर्ष सरदारगृह में सम्पन्न हिन्दु महासभा के वर्किंग कमेटी की बैठक में नॅशनल मिलीशिया' नामक संगठन खड़ा करने का निर्णय लिये जाने के पश्चात् डॉ. मुंजे की सूचनानुसार मैंने डॉक्टर हेडगेवारजी से बातचीत की। मैंने जब उनके सामने

इस 'मिलीशिया' को प्रशिक्षण देने के लिये संघ के स्वयंसेवकों की मदद मांगी तो उन्होंने सहर्ष मेरे इस अनुरोध को स्वीकार लिया और कहा कि वे इस कार्य के लिये प्रशिक्षण प्राप्त कुछ स्वयंसेवकों की मदद देने तैयार हैं। लोगों की अपेक्षा तो यह थी कि संघ ने संस्था के रूप में ही हिन्दुसभा का काम करना चाहिये और डॉक्टरजी हिन्दु महासभा का कार्य व्यक्तिगत रूप से करने के कतयी विरोधी नहीं थे। संघ को विशुद्ध संगठन संस्था ही बनाये रखने की डॉक्टरजी की नीति के कारणही संघ विभिन्न राजनीतिक दलों से अलिप्त रहकर इतना बढ़ सका। यहीं क्यों, डॉक्टरजी ने स्वयं क्रांग्रेस की राजनीति में भाग लिया और अनेक वर्षों तक हिन्दुसभा के सेक्रेटरी और उपाध्यक्ष के नाते भी कार्य किया। उनकी अपेक्षा यही थी कि संघके स्वयंसेवककों को अपना अधिकाधिक समय संघ कार्य में ही बिताना चाहिये । और डॉक्टरजी की यह अपेक्षा उचित ही है। किन्तु जो लोग हिन्दुसभा का कार्य करने की इच्छा और स्फूर्ति रखते हों, उन्हे व्यक्तिगत रूप से ऐसा करने के लिये उनकी कोई मनाही नहीं थी।''

इसके बाद भी डॉ. मुंजे के माध्यम से डॉक्टरजी पर इस बात का दबाव डाला जाता रहा कि किसी तरह हिन्दू महासभा के लिये एक 'व्हालंटियर कोर' के रूप में संघ स्वयंसेवकों का उपयोग करने के लिये डॉक्टरजी मान जायें। दि. १७ मार्च को हिन्दूसभा की ओर से 'रामसेना' नाम से एक स्वयंसेवक दल नागपुर में प्रारंभ हुआ और दि. २७ मार्च को 'महाराष्ट्र' में रामसेना के पदाधिकारियों की घोषणा की गई। उनमें डॉ. हेडगेवार का भी समावेश था। राजगिरि में जब डॉक्टरजी को इसकी सूचना मिली तो उन्हे बड़ा आश्चर्य हुआ तथा कुछ गुस्सा भी आया। कारण, संघ एवं रामसेना इन दो भिन्न भिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले संघटनों में एक ही समय पदाधिकारी के रूप में रहना संघटन की दृष्टि से अहितकर था और फिर उनके स्वास्थ्य की वर्तमान अवस्था में तो यह संभव भी नहीं था। इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी यह असमर्थता स्पष्ट एवं असन्दिग्ध शब्दों में 'रामसेना' के प्रवर्तकों को बारबार विदित कर दी थी। फिर भी उनका नाम घसीटने की प्रवृत्ति उन्हे अच्छी नहीं लगी। अतः दि. ३ अप्रैल के 'महाराष्ट्र' में उन्होंने एक छोटा सा संपादकीय स्पष्टीकरण प्रसिद्ध करवाया। उसमें कहा गया था कि ''नागपुर नगर हिन्दू सभा

द्वारा निर्मित रामसेना को सफल बनाने के लिये जो अपील दि. ७ मार्च के 'महाराष्ट्र' में छपी है, उस सम्बन्ध में रा.स्व.संघ के चालक डॉ. हेडगेवार राजगिरि से सूचित करते हैं कि 'उस पत्रक' पर मेरा नाम मेरी बिना जानकारी तथा अनुमति के छापा गया है।'' डॉक्टरजी यह जानते थे कि इस स्पष्टीकरण के प्रकाशित होने पर डॉ. मुंजे जैसे आदरणीय व्यक्तियों को बुरा लगेगा तथा इस कारण वे कुछ चिन्तित भी थे, किन्तु परतंत्र देश में राष्ट्रीय जागृति के उद्देश्य से निर्मित संघटन को, युद्ध की विषम एवं नाजुक परिस्थिति में सुरक्षित रखने के लिये राजनीतिक संस्था से अलिप्त रहना आवश्यक था। कुछ बुराई सहन करके भी उन्होंने इस कर्तव्य का निर्वाह किया। कर्तव्य अनेक बार इसी प्रकार कठोर होता है।

सच्चे नेतृत्व की कसौटी

समाज का नेतृत्व करनेवाला नेता कैसा हो, सच्चे नेतृत्व की कसौटी क्या है ? इसके विषय में भी उनके विचार मूलगामी तथा सुस्पष्ट थे। दि. १६ अप्रैल १९३१ को नागपुर में भाषण करते हुए डॉक्टरजी ने कहा था - ''.... सस्ती लोकप्रियता के पीछे लगकर लोकमत के प्रवाह में बहते जाना सरल है किन्तु सच्चे नेता का काम तो यह है कि यदि स्वतः की सद्सद्विवेक बुद्धि को लोकमत की बात नहीं जंचे तो लोकमत के प्रवाह के विरुद्ध खड़ा रहकर भी अपना मत छाती ठोककर जनता के सामने रखे। प्रवाह के साथ साथ बहना नेता का नहीं अनुयायी का लक्षण है। सच्चा नेता तो वह है जो अपने मत के अनुसार परिस्थिति को बनाकर लोकमत अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। नेतृत्व की कसौटी लोकमतानुवर्तित्व नहीं, लोक नियंत्रण है। अवसर पड़ने पर लोकमत के विरुद्ध जाने में भी न हिचकना ही सत्यनिष्ठा है।''

अन्तिम भाषण

१९४० के संघ शिक्षा वर्ग में डॉक्टरजी का समारोप भाषण हुआ। वह उनका अन्तिम भाषण था। वह सबने पढा है। सभी स्वयंसेवकों के हृदय पर वह अंकित है - उनका वह भाषण सदा अविस्मरणीय रहेगा। पूरा भाषण तो मैं नहीं पढूंगा,

केवल दो-चार पंक्तियों को ही सुनाना चाहूंगा। उन्होंने उस भाषण में कहा - "....प्रतिज्ञा कर लीजिये कि जब तक तन में प्राण हैं, संघ को नहीं भूलेंगे। कैसे भी मोह से आपको विचलित नहीं होना चाहिये। अपने जीवन में ऐसा कहने का कुअवसर न आने दीजिये कि पांच साल पहले संघ का सदस्य था। हम लोग जब तक जीवित हैं तब तक स्वयंसेवक रहेंगे। तन-मन-धन से संघ का कार्य करने के लिये अपने दृढ़ निश्चय को अखंडित रूप से जागृत रखिये। रोज सोते समय सोचिये कि 'आज मैंने कितना काम किया ?' यह भी ध्यान में रखिये कि केवल संघ का कार्यक्रम ठीक रूप से करने या प्रतिदिन नियमित रूप से संघस्थान पर उपस्थित रहने से संघ कार्य पूरा नहीं हो सकता। हमें तो आसेतुहिमाचल फैले हुए विशाल हिन्दूसमाज को संघटित करना है। सच्चा महत्त्वपूर्ण कार्यक्षेत्र केवल स्वयंसेवकों में नहीं। संघ के बाहर जो लोग हैं, उनमें भी काम करना है। हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि उन लोगों को हम राष्ट्र के उद्धार का सच्चा मार्ग बतायें और यह मार्ग है, केवल संघटन का। हिन्दू जाति का अन्तिम कल्याण इस संघटन के द्वारा ही हो सकता है। दूसरा कोई भी काम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नहीं करना चाहता। यह प्रश्न कि आगे चलकर संघ क्या करने वाला है, निरर्थक है। संघ इसी संघटन कार्य को कई गुना तेजी से आगे बढ़ायेगा यों ही बढ़ते बढ़ते एक ऐसा स्वर्ण दिन अवश्य आयेगा, जिस दिन सारा भारतवर्ष संघमय दिखाई देगा। फिर हिन्दूजाति की ओर वक्रदृष्टि से देखने का सामर्थ्य संसार की किसीभी शक्ति में नहीं हो सकेगा। .... मैं आज आपको इस दृढ़ विश्वास के साथ बिदाई दे रहा हूं कि आप सब इस मंत्र को अपने हृदय पर अच्छी तरह अंकित कर यहां से जायेंगे कि एक मात्र संघ कार्य ही मेरे जीवन का कार्य है।"

डॉक्टरजी की श्रेष्ठता का रहस्य

डॉक्टर हेडगेवारजी की श्रेष्ठता का रहस्य क्या है ? इस संबन्ध में प.पू. श्री गुरुजी कहते हैं - "समर्पित जीवन का सामर्थ्य क्या क्या कर सकेगा, यह कौन बता सकता है ? वंशगत संस्कारों को भी शुद्ध कर, अनिष्ट को नष्ट करने तथा इष्ट एवं आवश्यक गुणों की स्थापना एवं संग्रह करने की अतिमानवीय शक्ति उन्हें अपनी सर्वस्वार्पण की वृत्ति से ही प्राप्त हुई थी। .... इस प्रकार का कल्पनातीत शक्तिसम्पन्न

विवेक एवं कार्यनिष्ठा उनके पवित्र, निःस्वार्थ एवं राष्ट्रसमर्पित जीवन के कारण ही प्राप्त करना संभव था। यह उनके जीवन का अत्यंत भव्य एवं अनाकलनीय चमत्कार हैं।''

डॉक्टरजी के जीवन का संदेश

और आखिर में, डॉक्टरजी के जीवन का संदेश क्या है, इसके बारे में श्री गुरूजी बताते हैं:- ''परम पूजनीय डॉक्टरजी के कष्टपूर्ण, परिश्रमी एवं कर्मठ जीवन से सर्वसाधारण व्यक्ति को एक आशादायी संदेश मिलता है। दरिद्रता, प्रसिद्धिविहीनता, बड़ों की उदासीनता, परिस्थिति की प्रतिकूलता, पग-पग पर बाधाएं, विरोध, उपेक्षा, उपहास आदि का कटु अनुभव के साथ साथ स्वीकृत कार्य की पूर्ति के लिये आवश्यक साधनों का अत्यंत अभाव आदि कितनी ही कठिनाईयां मार्ग में आये, तो भी अपने कार्य के साथ तन्मय होकर 'मुक्त संगोऽनहंवादी' इस वृत्ति से सुखदुःख, मानापमान यशापयश आदि किसी की भी चिन्ता न करते हुए यदि कोई प्रयत्नशील रहेगा तो उसे अवश्य सफलता मिलेगी। पूर्वप्रकाशित डॉक्टरजी के छोटे जीवन चरित्र के आरंभ में ''क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतांनोपकरणे'' यह जो सुभाषित दिया है, वह उनके ऊपर पूरी तरह लागू होता है, किंबहुना उनका सम्पूर्ण जीवन ही इस उक्ति का मूर्तिमंत उदाहरण है।...... किसी भी सामाजिक कार्य को करते समय बाधाओं से घबड़ाकर, निराशा से कार्य विमुख होनेवाले को, इस पवित्र जीवन से आशा का सन्देश प्राप्त होकर सदैव ही कार्यरत् रहने की प्रेरणा मिल सकेगी।''

नागपुर संघ शाखा के वर्षप्रतिपदा महोत्सव (८ अप्रैल १९९७) पर
मान. ठेंगडीजी का उद्‌बोधन

8 अप्रेल 1997
नागपुर

शब्दांकन
श्री पद्माकर भाटे

प्रकाशक
भारतीय विचार साधना,
डॉ. हेडगेवार भवन, महाल, नागपुर ४४०००२

मुद्रक
श्याम ब्रदर्स, एस. टी. स्टॅण्ड रोड, नागपुर ४४००१८

मूल्य - रु. ५-००